१

आत्म-चेतना : आनन्द की तलाश में

भारतीय दर्शन और तत्त्व-चिन्तन ने एक बात मानी है, कि इस विराट् विश्व का अस्तित्व दो प्रमुख तत्त्वों पर निर्भर है।[१] दो तत्त्वों का मेल ही इस विश्व-स्थिति का आधार है। उनमें से एक है—शाश्वत, चिन्मय और अरूप। दूसरा है—क्षणभंगुर, अचेतन, रूपवान। प्रथम को, जीव कहा गया है और दूसरे को, जड़-पुद्गल। यह शरीर, ये इन्द्रियाँ, ये महल और यह धन-संपत्ति, सब पुद्गल का खेल हैं। ये कभी बनते हैं, कभी मिटते हैं। पुद्गल का अर्थ ही है—**"पूरणात् गलनाद् इति पुद्गलः"** मिलना और गलना। संघात और विघात, यही पुद्गल का लक्षण है।

यह विराट् विश्व परमाणुओं से भरा हुआ है। इनमें से भी कुछ परमाणु-पिण्डों का मिलन हुआ नहीं, कि शरीर का निर्माण हो गया। एक अवस्था एवं काल तक इसका विकास होता है और फिर बिखर जाता है। इसी प्रकार धन, ऐश्वर्य एवं मकान है। अनन्त-काल से ये तत्त्व चैतन्य के साथ मिल कर घूम रहे हैं, संसार का चक्कर लगा रहे हैं। अनन्त-अनन्त बार शरीर आदि के रूप में एक साथ मिले, नये-नये खेल किए और फिर गलने लगे, बिखर गए।

आकाश में बादलों का खेल होता है। एक समय यह अनन्त आकाश साफ है, सूर्य का प्रकाश चमक रहा है, किन्तु कुछ ही समय बाद काली-काली जल से भरी हुई घटाएँ घुमड़ती-मचलती चली आती हैं, आकाश में छा जाती हैं और सूर्य का प्रकाश ढक जाता है। फिर कुछ समय बाद हवा का एक प्रचण्ड झोंका आता है, बादल चूर-चूर हो कर बिखर जाते हैं, आकाश स्वच्छ हो जाता है और सूर्य फिर पहले की तरह चमकने लगता है। यह पुद्गलों का रूप है। एक क्षण बिजली चमकती है, प्रकाश की लहर उठती है और दूसरे ही क्षण बुझ जाती है, समूचा दृश्य अन्धकार में डूब जाता है।

इस दष्टादृष्ट अनन्त विश्व की सर्वात्मवादी व्याख्या सत्ता पर आधारित है। 'सत्ता' अर्थात् सामान्य, 'सामान्य' अर्थात् 'द्रव्य' अर्थात् अविनाशी मूल तत्त्व। सत्ता के दो मूल रूप हैं—जड़ और चेतन। ये दोनों ही तत्त्व विश्व के अनादि-निधन मौलिक भाग हैं। दोनों परिवर्तनशील हैं, क्रिया-धारा में प्रवहमान हैं। एक क्षण के लिए भी कोई क्रियाशून्य नहीं रह पाता। कभी स्वतन्त्र रूप से, तो कभी पारस्परिक प्रभाव-प्रतिप्रभाव से क्रिया-प्रतिक्रिया का चक्र चलता ही रहता है। हम सब, जो यह परिवर्तन-चक्र देख रहे हैं, वह किसी ऐसे आधार की ओर संकेत देता है, जो परिवर्तित हो कर भी परिवर्तित नहीं होता अर्थात् अपनी मूल स्वरूप-स्थिति से कभी भी च्युत नहीं होता। और वह आधार क्या है? दर्शन का उत्तर है—'सत्ता'। सत्ता अर्थात् अनादि-अनन्त मूल तत्त्व। सत्ता का जन्म नहीं है। इसलिए उसकी आदि नहीं है। और, सत्ता का विनाश नहीं है, न स्वरूप परिवर्तन है। इसलिए उसका अन्त भी नहीं है। सत्ता, जिसके जड़ और चेतन—दो रूप हैं, अपने में एक वास्तविक शाश्वत तत्त्व है। यह न कोई आकस्मिक संयोग है और न कोई

---

१. जैन-दर्शन एवं वैदिक-दर्शन आदि में अनेकरूपी और अरूपी तत्त्व अर्थात् द्रव्य स्वीकृत हैं। किन्तु, यहाँ मुख्य रूप से पुद्गल और आत्म-तत्त्व की चर्चा है। मुख्य रूप से दोनों के मिलन से ही संसार है और परस्पर में दोनों की वियुक्ति—पार्थक्य होते ही आत्मा की मुक्ति है और यही परमात्म-भाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल्पनिक सत्य। यह किसी सर्वोच्च सत्ता के रूप में मान गए, ईश्वर, खुदा या गौड की देन भी नहीं है और न ऐसी किसी तथाकथित शक्ति-विशेष से प्रशासित है। इस प्रकार उक्त अखण्ड, अविनाशी सत्ता का न कोई कर्ता है और न हर्ता है। यह अपने आप में शत-प्रतिशत पूर्ण है, स्वतन्त्र है। पूर्ण और स्वतन्त्र अर्थात् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र। इसकी अपनी नियम-बद्धता भी निश्चित है अर्थात् स्वतन्त्र है। इसके अस्तित्व में कोई हेतु नहीं है। तर्क की भाषा में कहा जाए, तो कह सकते हैं—**"सत्ता, सत्ता है, क्योंकि वह सत्ता है।"**

इस विराट् विश्व की व्यवस्था का मूल सूत्र है—'सत्ता'। इसके अनेकानेक महत्त्व-पूर्ण अंश मानव-बुद्धि के द्वारा परिज्ञात हो चुके हैं, फिर भी मानव का तर्कशील मस्तिष्क अभी तक विश्व के अनन्त रहस्यों का ठीक तरह उद्‌घाटन नहीं कर पाया है, न इसकी विराट्-शक्ति का कोई एक निश्चित माप ही ले सका है। विश्व की सूक्ष्मतम सीमाओं की खोज में, उसकी अज्ञात अतल गहराइयों को जानने की दिशा में मानव अनादि-काल से प्रयत्न करता आ रहा है। उसे एक सर्वथा अज्ञात रहस्य मान कर अथवा अनावश्यक प्रपंच समझ कर, वह कभी चुप नहीं बैठा है। शोध की प्रक्रिया निरन्तर चालू रही है। इसी अज्ञात को ज्ञात करने की धुन में विज्ञान के चरण निरन्तर आगे, और आगे बढ़ते रहे हैं, और वह अनेकानेक अद्‌भुत रहस्यों को रहस्य की सीमा में से बाहर निकाल भी लाया है। फिर भी, अभी तक निर्णयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है—"विश्व का यह अभिव्यक्त मानचित्र अन्तिम है। इसकी यह इयत्ता है, आगे और कुछ नहीं है।" सचमुच ही सर्व-साधारण जन-समाज के लिए यह विश्व एक पहेली है, जो कितनी ही बार बूझी जा कर भी अनबूझी ही रह जाती है।

चेतन और अचेतन :

साधारण मानव-बुद्धि के लिए भले विश्व आज एक पहेली हो, किन्तु भारतीय तत्त्व-दर्शन ने इस पहेली को ठीक तरह सुलझाया है। भारत का तत्त्व-दर्शन कहता है, कि विश्व की सत्ता के दो मौलिक रूप हैं—जड़ और चेतन। सत्ता का, जो चेतन भाग है, वह संवेदन-शील है, अनुभूति-स्वरूप है। किन्तु, जड़ भाग उक्त शक्ति से सर्वथा शून्य है। यही कारण है, कि चेतन की अधिकांश प्रवृत्तियाँ पूर्व-निर्धारित होती हैं। अपनी इस निर्धारण की क्रिया में, उपयोग की धारा में, चेतन स्वतन्त्र है। किन्तु, जड़ सर्वथा अचेतन है, चेतनाशून्य है। अतः जड़ की अपनी क्रिया में स्वयं जड़ का अपना कोई हेतु नहीं है। जड़ की क्रिया होती है, सतत होती है, परन्तु वह कोई हेतु एवं लक्ष्य निर्धारित करके नहीं होती।

चेतन : आनन्द की खोज में :

चेतन, अनादि-काल से आनन्द की खोज में रहा है। आनन्द ही उसका चरम लक्ष्य है, अन्तिम प्राप्तव्य है। चेतन को अपनी जीवन-यात्रा में तन और मन के चरम आनन्द मिले हैं, भौतिक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हुई हैं और वह इनमें उलझता भी रहा है, अटकता और भटकता भी रहा है। इन्हें ही वह अपना अन्तिम प्राप्तव्य मानकर सन्तुष्ट होता रहा है। परन्तु, यह आनन्द क्षणिक है। साथ ही दुःख-संपृक्त भी है। विष-मिश्रित मधुर मोदक जैसी स्थिति है इसकी। अतः जागृत चेतन कुछ और झांकने लगता है, शाश्वत, दुःख-मुक्त आनन्द की खोज में आगे चरण बढ़ा देता है। उक्त सच्चे और स्थायी आनन्द की खोज ने ही मोक्ष के अस्तित्व को सिद्ध किया है—परम्परागत दृष्ट जीवन से परे अनन्त, असीम, आनन्दमय जीवन का परिबोध दिया है। जड़ की स्वयं अपनी ऐसी कोई खोज नहीं है। जड़ की सक्रियता स्वयं उसके लिए सर्वतोभावेन निरुद्देश्य है, जबकि चेतन की क्रियाशीलता सोद्देश्य है। चेतन का परम उद्देश्य क्या है और वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है?—इसी विश्लेषण की दिशा में मानव हजारों-हजार वर्षों से प्रयत्न कर रहा है। यह चिन्तन,, यह मनन, यह प्रयत्न ही चेतन का अपना स्व-विज्ञान है, जिसे शास्त्र की भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अध्यात्म कहते हैं। अध्यात्म-भूमिका ज्यों ही स्थिर स्थिति में पहुँचती है, साधक के अन्तर में से सहज आनन्द का अक्षय-स्रोत फूट पड़ता है।

चेतन के स्वरूप-बोध का मूलाधार :

स्थूल दृश्य पदार्थों को आसानी से समझा जा सकता है, उनकी स्थिति एवं शक्ति का आसानी से अनुमापन हो सकता है, किन्तु चेतना के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। चेतना अत्यन्त सूक्ष्म तथा गूढ़ है। दर्शन की भाषा में 'अणोरणीयान्' है। साधारण मानव-बुद्धि के पास तत्त्व-चिन्तन के, जो इन्द्रिय एवं मन आदि ऐहिक उपकरण हैं, वे बहुत ही अल्प हैं, सीमित हैं। साथ ही सत्य की मूल स्थिति के वास्तविक आकलन में अधूरे हैं, अक्षम हैं। इसके माध्यम से चेतना का स्पष्ट परिबोध नहीं हो पाता है। केवल ऊपर की सतह पर तैरते रहने वाले भला सागर की गहराई को कैसे जान सकते हैं ? जो साधक अन्तर्मुख होते हैं—साधना के पथ पर एक निष्ठा से गतिमान रहते हैं—चेतना के चिन्तन तक ही नहीं, अपितु चेतना के ज्ञान-विज्ञान तक पहुँचते हैं—निजानुभूति की गहराई में उतरते हैं, वे ही चेतना के मूल-स्वरूप का दिन के उजाले की भाँति स्पष्ट परिबोध पा सकते हैं।

विश्व की क्षणभंगुरता :

भारतीय-दर्शन और भारतीय-संस्कृति में दुःख और क्लेश तथा अनित्यता और क्षणभंगुरता के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा गया है, और बहुत-कुछ कहा गया है। यही कारण है, कि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय दर्शन की उत्पत्ति अनित्यता और दुःख में से ही मानते हैं। क्या दुःख और अनित्यता भारतीय दर्शन का मूल हो सकता है ? यह एक गम्भीर प्रश्न है, जिस पर भरपूर चिन्तन, मनन एवं विचार किया गया है। जीवन अनित्य है और जीवन दुःखमय है, इस चरम सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। संभवतः पाश्चात्य-जगत् के विद्वान् भी इस सत्य को ओझल नहीं कर सकते। जीवन को अनित्य, दुःखमय, क्लेशमय, क्षणभंगुर मान कर भी भारतीय दर्शन आत्मा को एक अमर और शाश्वत तत्त्व मानता है। आत्मा को अमर और शाश्वत मानने का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता, कि उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। परिवर्तन तो जगत् का एक शाश्वत नियम है। चेतन और अचेतन, दोनों में ही परिवर्तन होता है। किन्तु, इतनी बात अवश्य है, कि जड़गत परिवर्तन की प्रतीति शीघ्र हो जाती है, जबकि चेतनगत परिवर्तन की प्रतीति शीघ्र नहीं हो पाती। यदि चेतन में परिवर्तन नहीं होता, तो आत्मा का दुःखी से सुखी होना, यह कैसे संभव हो सकता था ? जीवन और जगत् में प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है, दर्शन-शास्त्र का यह एक चरम सत्य है।

भारतीय दर्शन अनित्य में से, दुःख में से जन्म लेता है। श्रमण भगवान् महावीर ने कहा है—**"अणिच्चे जीव-लोगम्मि।"** यह संसार अनित्य है और क्षणभंगुर है। क्या ठिकाना है इसका ? कौन यहाँ पर अजर-अमर बनकर आया है ? संसार में शाश्वत और नित्य कुछ भी नहीं है। यही बात तथागत बुद्ध ने भी कही है—**"अणिच्चा संखारा।"** यह संस्कार अनित्य है, क्षणभंगुर है। विशाल बुद्धि महर्षि व्यास ने भी कहा है—

"अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्म-संग्रहः॥"

—शरीर अनित्य है, धन-वैभव भी अनित्य है, शाश्वत नहीं है। मृत्यु सदा सिर पर मंडराती रहती है, न जाने कब मृत्यु आ कर पकड़ ले। अतः जितना हो सके, धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

भारतीय संस्कृति एवं दर्शन का यह अटल विश्वास है, कि मौत हर इन्सान के पीछे छाया की तरह चल रही है। जिस दिन जन्म लिया था, जिस दिन माँ के गर्भ में अवतरित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ था, उसी क्षण से इन्सान के पीछे मौत लग चुकी थी। न जाने, वह कब झपट ले और कब हमारे जीवन को समाप्त कर दे। जीवन का यह खिला हुआ फूल न जाने कब संसार की डाली से झड़ कर अलग हो जाए। जीवन, नदी के उस प्रवाह की तरह है, जो निरन्तर बहता ही रहता है। श्रमण भगवान् महावीर ने इस मानव-जीवन को अनित्य और क्षण-भंगुर बताते हुए कहा है—"यह जीवन कुश के अग्रभाग पर स्थित जल-बिन्दु के समान अस्थिर है। मरण के पवन का एक झोंका लगते ही धराशायी हो जाता है"—

"कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥"[1]

जिस शरीर पर मनुष्य अभिमान करता है, वह शरीर भी विविध प्रकार के रोगों से आक्रान्त है। पीड़ाओं और व्यथाओं का भण्डार है। न जाने कब और किस समय और कहाँ कौन रोग इसमें से फूट पड़े? यह सब-कुछ होने पर भी, भारतीय दर्शन और संस्कृति के उद्गाता उस दुःख का केवल रोना रो कर ही नहीं रह गए। क्षणभंगुरता और अनित्यता का उपदेश दे कर ही नहीं रह गए। केवल मनुष्य के दुःख की बात कह कर, अनित्यता की बात दुहरा कर तथा क्षणभंगुरता की बात सुना कर, निराशा के गहन गर्त में ला कर उसने जीवन को धकेल नहीं दिया, बल्कि निराश, हताश और पीड़ित जन-जीवन में आशा की सुख कर उपदेश रश्मियाँ प्रदान कर उसे प्रकाशित-प्रफुल्लित भी कर दिया। उसने कहा—"मानव, आगे बढ़ते जाओ। जीवन की क्षणभंगुरता और अनित्यता हमारे जीवन का लक्ष्य और आदर्श नहीं है।" अनित्यता एवं क्षणभंगुरता का उपदेश केवल इसलिए है, कि हम धन-वैभव में आसक्त न बनें। जब जीवन को और उसके सुख-साधनों को, अनित्य और क्षणभंगुर मान लिया जाएगा, तब उसमें आसक्ति नहीं जगेगी। आसक्ति का न होना ही भारतीय-संस्कृति की साधना का मूल लक्ष्य है, चरम उद्देश्य है।

भारतीय-संस्कृति में जीवन के दो रूप माने गए हैं—मर्त्य और अमर्त्य। इस जीवन में कुछ वह है, जो अनित्य है, क्षणभंगुर है। और, इस जीवन में वह भी है, जो अमर्त्य है, अमर है, अमृत है। जीवन का मर्त्य-भाग क्षण-प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, समाप्त होता जा रहा है। जिस प्रकार अञ्जलि में भरा जल बूंद-बूंद कर के रिसता चला जाता है, उसी प्रकार जीवन-पुञ्ज में से जीवन के क्षण निरन्तर बिखरते रहते हैं। जिस प्रकार एक फूटे घड़े से बूंद-बूंद करके पानी निकलता रहता है और कुछ काल में घड़ा खाली हो जाता है, प्राणी के जीवन की भी यही स्थिति है, यही दशा है। जीवन का मर्त्य भाग अनित्य है, क्षणभंगुर है और विनाशशील है। यह तन अनित्य है, यह मन क्षणभंगुर है, ये इन्द्रियाँ अशाश्वत हैं, धन और संपत्ति चंचल है। पुरजन और परिजन आज हैं और कल नहीं। घर की लक्ष्मी उस बिजली की रेखा के समान है, जो चमक कर क्षणभर में विलुप्त हो जाती है। आप जरा सोचिए तो, इस अन्तहीन और सीमाहीन संसार में किसकी विभूति नित्य रही है और किसका ऐश्वर्य स्थिर रहा है। रावण का परिवार कितना विराट् था। दुर्योधन का परिवार कितना विशाल था, विस्तृत था। किन्तु, उन सबको ध्वस्त होते, मिट्टी में मिलते कितनी देर लगी? जिस प्रकार जल का बुद-बुद जल में जन्म लेता है और जल में ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार धन, वैभव और ऐश्वर्य मिट्टी में से जन्म लेते हैं और अन्त में मिट्टी में ही विलीन हो जाते हैं। भारतीय-संस्कृति का वैराग्य रोने-विलखने के लिए नहीं है, बल्कि इसलिए है कि हम जीवन के मर्त्य-भाग में आसक्त न बनें, और जीवन के किसी मर्त्य रूप को पकड़ कर न बैठ जाएँ। सब-कुछ पा कर भी, सबके मध्य में रह कर भी, हम समझें कि यह हमारा अपना स्वरूप नहीं है। यह सब आया है और चला जाएगा। जो-कुछ आता है, वह जाने के लिए ही आता है, स्थिर रहने और टिकने के लिए नहीं आता है।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र, १०,२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय-दर्शन और संस्कृति का यह अनित्यता का, क्षणभंगुरता का उपदेश जीवन को जागृत करने के लिए है, जीवन को बन्धनों से विमुक्त करने के लिए है।

जीवन का दूसरा रूप है—अमर्त्य, अमृत और अमर। जीवन के अमर्त्य-भाग को आलोक और प्रकाश कहा जाता है। अमृत का अर्थ है—कभी न मरने वाला। अमर का तात्पर्य है—जिस पर मृत्यु का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। वह क्या तत्त्व है? इसके उत्तर में भारतीय-दर्शन कहता है—इस क्षणभंगुर, अनित्य और मर्त्य-शरीर में, जो कुछ अमर्त्य है, जो कुछ अमर है, वह आत्म-तत्त्व है। यह आत्म-तत्त्व, वह तत्त्व है, जिसका न कहीं आदि है और न कहीं अन्त है। यह आत्म-तत्त्व अविनाशी है, नित्य है, शाश्वत है। न कभी इसका जन्म हुआ है और न कभी इसका मरण होगा। भारत के प्राचीन दार्शनिकों ने अपनी समग्र-शक्ति इस अविनाशी तत्त्व की व्याख्या में लगा दी थी। आत्मा क्या है? वह दर्शन है, वह ज्ञान है, वह वीतराग है, वह चिदानन्द है, वह चित्—प्रकाश है। अमृत वह होता है, जो अनन्त काल से है, और अनन्त-अनन्त काल तक रहेगा। वैदिक-परम्परा के एक ऋषि ने कहा है—**"अमृतस्य पुत्राः।"**

हम सब अमृत के पुत्र हैं। अतः हम सब अमृत हैं, हम सब नित्य हैं, हम सब शाश्वत हैं। अमृत-आत्मा का पुत्र अमृत ही हो सकता है, मृत नहीं। ईश्वर अमृत है और हम सब उसके भक्त-पुत्र हैं। जिन और सिद्ध शाश्वत हैं, इसलिए हम सब शाश्वत हैं, नित्य हैं। इस अमृत-भाग को जिसने जान लिया, समझ लिया, उस आत्मा के लिए इस संसार में कहीं पर भी न कोई रोग है, न शोक है, न क्षोभ है और न मोह है। क्षोभ और मोह की उत्पत्ति जीवन के मर्त्य-भाग में होती है, अमर्त्य भाग में नहीं। यदि किसी का प्रियजन मर जाता है, तो विलाप करता है। परन्तु, मैं पूछता हूँ, यह विलाप किसका किया जाता है? क्या आत्मा का या देह का? आत्मा के लिए विलाप करना तो बहुत बड़ा अज्ञान ही है, क्योंकि वह सदा काल के लिए शाश्वत है, फिर उसके लिए विलाप क्यों? यदि शरीर के लिए विलाप करते हैं तो यह भी एक प्रकार की मूर्खता ही है। क्योंकि शरीर तो क्षणभंगुर ही है। वह तो मिटने हेतु ही बना है। अनन्त अतीत में भी वह अनन्त बार बना है और अनन्त बार मिटा है। अनन्त आगत में भी वह अनन्त बार बन सकता है और अनन्त बार मिट सकता है। हाँ तो जिसका स्वभाव ही बनना-बिगड़ना है, फिर उसके लिए विलाप क्यों? जीवन में जो अमर्त्य है, वह कभी नष्ट नहीं होता और जीवन में जो मर्त्य है, वह कभी टिक कर नहीं रह सकता। अतः क्षण-भंगुरता की दृष्टि से और नित्यता की दृष्टि से भी विलाप करना अज्ञान का ही द्योतक है। जो-कुछ मर्त्य-भाग है, वह किसी का भी क्यों न हो और किसी भी काल का क्यों न हो, कभी स्थिर रह नहीं सकता।

चक्रवर्ती का महान् ऐश्वर्य और तीर्थंकरों की विशाल भौतिक विभूति, देवताओं की सुख-समृद्धि तथा राजा-महाराजाओं का साम्राज्य-वैभव कभी स्थिर नहीं रहा है, फिर एक साधारण मनुष्य की साधारण धन-सम्पत्ति तो स्थिर कैसे रह सकती है? इस जीवन में परिवार आदि का जितना सम्बन्ध है, वह सब शरीर का है, आत्मा का तो सम्बन्ध होता नहीं है। इस जीवन में, जो-कुछ प्रपंच है, वह सब शरीर का है। आत्मा तो मूलतः प्रपंच-रहित होती है। प्रपंच और विकल्प तन-मन के होते हैं, आत्मा के नहीं। किन्तु, अज्ञान-वश इनको हमने अपना समझ लिया है और इसी कारण हमारा यह जीवन दुःखमय एवं क्लेशमय है। जीवन के इस दुःख और क्लेश को, क्षणभंगुरता और अनित्यता के उपदेश से दूर किया जा सकता है। क्योंकि जब तक भव के विभव में अपनत्व बुद्धि रहती है, तब तक वैभव के बन्धन से विमुक्ति कैसे मिल सकती है? पर में स्व बुद्धि को—मेरेपन की वृत्ति को तोड़ने के लिए ही अनित्यता का उपदेश दिया गया है।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org